भारत में शिक्षा के बदलते आयाम

डॉ0 नम्रता चौकोटिया,

पी–एच0डी0 अनुभाग (असिस्टेंट ग्रेड– ।।।)
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

शिक्षा मानव समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थागत प्रक्रिया मानी गई है जो मनुष्य को विविध रूपों में प्रभावित करती है। इसने मनुष्य को श्रेष्ठ सामाजिक–सांस्कृतिक प्राणी बनाने में बड़ा योगदान दिया है। इसने ज्ञान–विज्ञान व समाज को प्रगतिशील बनाया है। भारत में प्रारम्भ से ही शिक्षा और शिक्षण को विशेष महत्व दिया जाता रहा है। भारतीय ऋषियों ने जीवन–जगत, प्रकृति, आचार–विचार और चिरन्तन सत्य का गहन अध्ययन 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' के सिद्धान्त को आधार मानकर किया था। इन ऋषियों की प्रारम्भिक कृतियों के रूप में चार वेदों–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को भारतीय दर्शन का प्रमुख आधार कहा जाता है। ज्ञान की आराधना तपोवनों, आश्रमों और गुरूकुलों में चिन्तन–मनन और योग के द्वारा की जाती थी। इन वेदों में जीवन और उससे सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विवेचन किया गया है। भारत के अतीत में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ उसे वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली कहते हैं। यह नामकरण इसलिये किया गया क्योंकि हमारे देश की प्राचीन शिक्षा प्रणाली के प्रमुख आधार वेद थे। प्राचीनकाल में शिक्षा का आदर्श ईश्वर मुक्ति एवं धार्मिकता की भावना,चरित्र–निर्माण, व्यक्तित्व का विकास,नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति एवं भारतीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार था।

वैदिक साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में व्यक्त हुआ है, यथा–विद्या,ज्ञान,बोध और विनय, साथ ही आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों के समान वैदिक काल में भी शिक्षा शब्द का प्रयोग व्यापक और सीमित दोनों अर्थों में किया गया है। व्यापक अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य जीवन पर्यन्त चलने वाली सतत् प्रक्रिया से था, जिसमें व्यक्ति जीवन भर किसी न किसी रूप में शिक्षा ग्रहण करता रहता था, जबकि सीमित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय औपचारिक शिक्षा से था, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व शिष्य के रूप में गुरू से शिक्षा प्राप्त करता था।

प्राचीनतम वैदिक काल के जन्म से लेकर लगभग एक हजार वर्ष से अधिक की अवधि तक हम भारतीय साहित्य को विशेष रूप से धार्मिक प्रकृति का पाते हैं। प्राचीनकाल में व्यावसायिक शिक्षा को भी महत्व दिया गया। व्यावसायिक शिक्षा के कारण ही प्राचीन भारत अपने आर्थिक जीवन और वैभव का निर्माण करने में सफल हुआ। व्यावसायिक शिक्षा में सैनिक शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा व वाणिज्य की शिक्षा के रूप में प्रदान की जाती थी। प्राचीन काल में ब्राह्मणीय शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। इसमें धर्म के साथ–साथ लौकिक पक्ष को भी ध्यान में रखा जाता था। इस शिक्षा के भी कुछ सिद्धान्त थे। जैसे कि विद्या आरम्भ करने का एक उचित स्थान होना निश्चित था, गुरू शिष्य के सम्बन्ध भी मानस पिता एवं मानस पुत्र के समान थे। छात्रों की नियमित दिनचर्या का भी ध्यान रखा जाता था। व्यक्ति, राष्ट्र तथा समाज की भौतिक उन्नति करना इस विषय की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। आत्म नियन्त्रण की शिक्षा, चरित्र–निर्माण की शिक्षा, नागरिकता की भावना का विकास करना,

सामाजिकता की भावना का विकास करना, व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करना,राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा करने योग्य बनाना आदि शिक्षा के माध्यम से बच्चों को सिखाया जाता था। इस ब्राह्ममण कालीन शिक्षा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, शिक्षा, कल्पराशि (गणित), देव–विद्या, विधिशास्त्र, बाकी–देव विद्या, भूत विद्या, छात्र विद्या, नक्षत्र विद्या, देवजन, विद्या आदि का अध्ययन छात्रों की सम्यक रूप से करना होता था। इन विषयों के ज्ञान का जीवन में विशेष उपयोगिता थी, इसका अध्ययन करना छात्रों के लिये आवश्यक था।

वैदिक काल में शिक्षा पर राज्य का कोई नियन्त्रण नहीं था। प्रत्येक गुरूकुल अपनी आन्तरिक व्यवस्था नीति के लिये बिल्कुल स्वतन्त्र थे। शिक्षा वैयाक्तिक थी सामूहिक शिक्षा का प्रचार भी नहीं हुआ था। एक गुरू के संरक्षण में केवल 5 या 7 विद्यार्थी होते थे। इस प्रकार वह प्रत्येक पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने में समर्थ था। गुरूकुल शिक्षा प्रणाली हमारे देश की सबसे प्राचीन प्रणाली है।

हमारी संस्कृति अति प्राचीन काल से अध्यात्मवादी दर्शन पर आधारित रही है लेकिन आज हम अध्यात्मवादी दर्शन एवं संस्कृति को भूलकर भौतिकतावादी दर्शन की ओर उन्मुख हो गए है। आज पूरा का पूरा समाज भौतिकता के चकाचौंध से भ्रमित है जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हम वास्तविक सुख–शांति को भूलकर येनकेन प्रकारेण धन इकठ्ठा करने व भौतिक सुविधाएँ एकत्र करने के चक्कर में पड़े रहते हैं। अतः आज भौतिकतावादी एवं आध्यात्मवादी संस्कृति में समन्वय स्थापित करने के लिए मूल्यपरक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

अब प्रश्न उठता है कि शिक्षा संस्थाओं द्वारा बालकों को किन–किन मूल्यों का ज्ञान कराया जाए? भारतीय समाज विभिन्नताओं से भरा पड़ा है। बहुधर्मी, बहुभाषी, बहुजातियों के लोग यहाँ रहते हैं। फिर भी भारत में विभिन्नता में एकता के दर्शन होते हैं। वास्तव में यह हमारी असली पहचान है। हमारी संस्कृति में सभी धर्मों और उनके अनुयायियों को समान महत्व दिया जाता है इस प्रकार भारतीय संस्कृति समन्वयवादी रही है। हमारे मनीषियों ने चार पुरूषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बताए हैं। समाजवादी समाज की स्थापना करना हमारा लक्ष्य है। लोकतंत्र स्वतंत्रता, समानता, मातृत्व न्याय पर आधारित होता है। यही हमारे राष्ट्रीय मूल्य है जिन्हें जीवन में उतारना प्रत्येक नागरिक काकर्तव्य है। एन.सी. ई.आर.टी ने पाँच जीवन मूल्यों को स्वीकारा है– सफाई, सच्चाई, श्रम समानता और सहयोग। भारतीय समाज की विविधता को देखते हुए गाँधी जी ने एकादश व्रत– 1– सत्य, 2– अहिंसा, 3– अस्तेय, 4– अपरिग्रह, 5– ब्रम्हचर्य, 6– अस्वाद, 7– अभय, 8– अस्पृश्यता, 9– शारीरिक श्रम, 10–सर्वधर्म समभाव, 11– विनम्रता को जीवन मूल्यों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

यदि मूल्य शिक्षा की बात की जाए तो मूल्य शिक्षा को न तो हम धार्मिक शिक्षा का रूप कह सकते हैं और न ही नैतिक शिक्षा। यह मूलतः एक धर्म निरपेक्ष शिक्षा है। जिसमें परम्परा, आधुनिकता, शाश्वत मूल्यों, सांस्कृतिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी मूल्यों का मिश्रण होता है जिससे मानव जीवन में आध्यात्मिक उत्थान, विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास होता है। वास्तव में मूल्यपरक शिक्षा सत्य, धर्म, शक्ति, प्रेम, अहिंसा इन्हीं मानवीय मूल्यों के विकास पर जोर देती है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर शिक्षा की पाठ्यचर्या, शिक्षण विधि की योजना बनाई जाती है जिससे हमारी सांस्कृतिक परम्परा विकसित हो, छात्रों में मूल्यपरक दृष्टिकोण विकसित हो जिससे राष्ट्र अमन–चयन से रह सके और विध्वंसक गतिविधियों का अंत हो। इस प्रकार जब मूल्यों को आधार बनाकर शिक्षा की प्रक्रिया को संगठित और सुव्यवस्थित की जाती है तो इसे मूल्य शिक्षा या मूल्यपरक शिक्षा कहते हैं जो परम्परागत रूप

से प्रचलित धार्मिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा से अधिक आधुनिक,उत्कृष्ट और व्यापक होती है।

मूल्यपरक शिक्षा का उददे्श्य छात्रों को आदर्शवान,चरित्रवान मानव बनाना है जो मानवीय आदर्शों, गुणों व व्यवहार के प्रतिमानों के अनुरूप व्यवहार करने लगें, अपने परिवेश के साथ समायोजन कर सके, सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो सके, जीवन में एकता स्थापित कर सके, अपने भविष्य के लिए योजना बनाकर सुखानुभूति कर सकें तथा समरसता की स्थापना कर सके। आज समाज में भय, अशांति का वातावरण व्याप्त है समाज में उथल–पुथल मचा हुआ है। न्याय, हिंसा, अत्याचार, आतंकवाद बढ़ रहा है मानवता का ह्रास हुआ है। ऐसे समय में सभी यह अनुभव कर रहे हैं कि समाज में मूल्यपरक शिक्षा का विधान किया जाय। हमारा देश लोकतांत्रिक मूल्यों को मानने वाला देश है। स्वतंत्रता, समानता भातृत्व, न्याय, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता को पूरी तरह स्वीकार करता है। वावजूद इसके संस्कृति हीनता, अमानवीयता, अलगाववाद, जातिवाद सम्प्रदायवाद, प्रान्तीयता एवं अन्य विघटनकारी शक्तियाँ हमारे दुनियाँ के सबसे बड़े लोकतंत्र को कमजोर करने में लगी हुई है। आज लोकतंत्र के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है । ऐसी स्थिति में मूल्यपरक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

वर्तमान की आवश्यकता है कि आज हम मानवतावादी दर्शन विकसित करें। चूँकि यह दर्शन मानवीय मूल्यों को नया अर्थ प्रदान करता है। मानवतावाद का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है उसे वाह्य जगत के साथ–साथ अन्तर्जगत का ज्ञान भी मिलना चाहिए। जिससे व्यक्तित्व स्वतंत्र तथा संतुलित हो जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग ले सके। अतः सभी मूल्यों को किसी न किसी रूप में शिक्षा में स्थान देने एवं विकसित करने का प्रयास होना चाहिए। यहाँ ध्यान रहे कि मूल्यपरक शिक्षा को सफल बनाने के लिए कुछ विशेषताओं का होना नितान्त आवश्यक है–1–मूल्यपरक शिक्षा धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा से भिन्न होना चाहिए। किसी धर्म पर विशेष बल नहीं देना चाहिए। 2–मूल्यपरक शिक्षा को विभिन्न विषयों के साथ समाहित करके दी जानी चाहिए। 3–मूल्यपरक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु भारत के संविधान में वर्णित नीति निर्देशक तत्व होने चाहिए। 4–मूल्यपरक शिक्षा देना सभी शिक्षकों का समान उत्तरदायित्व होना चाहिए न कि किसी विशेष शिक्षक की। 5–मूल्यपरक शिक्षा के लिए छात्रों को प्रेरित किया जाना चाहिए उन पर बलात् थोपा नहीं जाना चाहिए। 6–मूल्यपरक शिक्षा पाठ्य सहगामी क्रियाओं के साथ–साथ होना चाहिए। 7–मूल्यपरक शिक्षा देते समय छात्रों की उम्र एवं स्तर का ध्यान रखा जाना चाहिए।

यद्यपि वर्तमान पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगकर भारतीय परंपराओं को भुलाती जा रही है, परन्तु फिर भी वैदिक शिक्षा के निम्नलिखित तत्वों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित करके उसमें सुधार किया जा सकता है–यदि हम आज भी यह संकल्प ले लें कि हम सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान –भण्डार अपने देश में अपनी भाषा और अपनी शिक्षा पद्धति से प्राप्त करेंगें, तो निश्चय ही आज भी हम अपने उसी गौरव को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे जिसके लिये हम कभी जाने जाते थे। आधुनिकीकरण कहां नहीं होता? क्या रूस, चीन, जापान, फ्रांस, जर्मनी और अमेरिका आदि देश विकसित और आधुनिक नहीं हैं, जो अपनी शिक्षा पद्धति के विकास के लिये अपनी ही भाषा और विधियों का सहारा लेते हैं। ज्ञान–देश, काल और राष्ट्रीयता की सीमा से परे होता है, किन्तु जब वह अपनी भाषा में प्राप्त किया जाता है तभी सार्थक होता हैं विश्व का विकास अपने ही साधनों के माध्यम से ग्रहण करना चाहिये।

अंत में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा वह है जो भयमुक्त सही जीवन–शैली

(उठना–बैठना, अभिवादन, वार्तालाप, आदर, प्रेम, जीने के ढंग आदि) के सहयोगात्मक व्यवहार दे, उचित निर्णय व सुझाव की क्षमता दे, दायित्व बोध व अनुशासित रखें, जीविकोपार्जन के लायक बनाये, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का अच्छा मनुष्य बनने की क्षमता दे। मनुष्य में ऐसी क्षमता है जो शिक्षा की इस भूमिका के अनुरूप व्यवहार करे। मानव में ऐसे सुशुप्त–अभिलक्षण हैं कि वह आने वाले संकटों को पहचान सके, उनके कारणों का अध्ययन कर सके और उनसे बचने के सार्थक उपाय कर सके। वह उपयुक्त विकल्प भी खोज सकता है और उन्हें परिवर्तित करने की प्रविधि भी विकसित कर सकता हैं। आवश्यकता हैं इन अभिलक्षणों को दिशा, गति और तीक्ष्णता देने की। शिक्षा सत्य है। सत्य की सतत् खोज शिव की कामना व साधना हैं। कामना व साधना सुन्दर है। इसलिए शिक्षा व उसकी साधना सुन्दर होनी है। इक्कीसवीं सदी के लिए यही शिक्षा की सार्थक भूमिका हो सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भटनागर डॉ० सुरेश–आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा
2. गुप्त डॉ० रामबाबू– भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा
3. भटनागर, सुरेश (2004): भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ
4. रावत, आर.के. एवं वशिष्ठ, के.सी.(2005) : भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास,राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा
5. गुप्ता, एस.पी.व गुप्ता, अलका (2007) : आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएँ,शारदा पुस्तक भवन, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद
6. पाठक, पी.डी. (2000): भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
7. रस्तोगी कृष्णा गोपाल (डॉ०)– भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्यायें, आगरा, 1960
8. भारतीय शिक्षा और इसकी समस्यायें– पी.डी. पाठक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1974
9. अदावल डॉ० व उनियाल– भारतीय शिक्षा की समस्यायें तथा प्रवृत्तियां, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
10. लाल, रमन बिहारी एवं शर्मा, कृष्णकान्त, (2008): भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ,आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
11. वालिया, जे.एस.(2008): माडर्न इण्डियन एजुकेशन एण्ड इट्स प्रॉब्लम्स, 2001, पॉल पब्लिशर्स एन.एन. गोपाल नगर, जालन्धर, पंजाब
12. सिंह, वी.बी. एवं आहुजा, सुधा (2008): भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
13. अवनीन्द्र शील–भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ
14. मिश्र डॉ0 डी0सी0 –भारत में शैक्षिक पद्धति का विकास
15. लूनिया (लुणिया)बी0एन0–भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास
16. द्विवेदी डॉ0 शिवबालक–भारतीय संस्कृति
17. गोयल डॉ0 प्रीती प्रभा–संस्कृत साहित्य का इतिहास
18. उपनिषदों की भूमिका–डॉ0 राधाकृष्णन
19. मिश्रा डॉ0 देव नारायण–मनुस्मृति–व्याख्याकार
20. कालेलकर काका–उपनिषदों का बोध
21. इन्द्र प्रा0–कौटिल्य अर्थशास्त्र

22. मजूमदार, रमेशचन्द्र (2004): प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली